स्त्री विमर्श एक स्वस्थ दृष्टिकोण

डॉ. सचिन कुमार

पिछली शताब्दी के प्रौद्योगिकीय एवं आर्थिक परिवर्तनों के कारण न केवल सुस्थापित कार्य प्रणाली ही बदली बल्कि सोचने और कार्य करने की प्राचीन प्रवृतियाँ भी समाप्त-सी हो गई, परिणामस्वरूप 'स्त्री दृष्टिकोण' और 'स्त्री के प्रति दृष्टिकोण' में भी बदलाव आया, उसकी 'स्व' की अवधारणा को भी बल मिला, नारीवाद रचना दृष्टि आधुनिक युग की कुछ ऐसी ही स्थितियों की उपज है, यूं तो विश्व में महिला मुक्ति का लंबा इतिहास है, लेकिन १९वीं शताब्दी में यह विश्वव्यापी आन्दोलन बन गया और अमेरिका तथ यूरोप से शुरू यह आन्दोलन भारतीय समाज तक भी पहुँचा, भारत में स्वाधीनता आन्दोलन, विभिन्न समाज सुधारकों की कोशिश तथा पश्चिम में रचना विचार और अनुभूति के स्तर पर महिलावादी दृष्टि के साथ संपर्क ने इसका विस्तार ही किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में स्त्री की संघर्ष प्रक्रिया का आरम्भ हुआ, स्त्री की इस संघर्ष प्रक्रिया का पहला मोर्चा उसका अपना आंतरिक जीवन व समाज था तो दूसरा सामंतवाद, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद आदि बाह्म शक्तियों के खिलाफ आक्रोश व विद्रोह भी था |

नारीवाद अथवा स्त्री विमर्श पिछली शताब्दी का एक गंभीर विचार केन्द्रित मुद्दा रहा | नारीवाद पुरुष विरोधी झंडा लेकर आगे चलने वाला नकारात्मक आन्दोलन नहीं बल्कि एक स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण है, इसकी व्यापकता, विस्तार, विचार और आकार को स्पष्ट रूप से विवेचित सिद्ध और स्थापित करने

वाली कई चर्चित कृतियाँ इस बीच आई हैं जो नारीवाद अथवा स्त्री विमर्श के बारे में भ्रांतियों को दूर कर उसके सत्य को स्थापित करके नारीवाद अथवा स्त्री विमर्श की स्वस्थ व्याख्या करती हैं |

अरविन्द जैन कृत 'औरत होने की सज़ा' :- साहित्य, समाज, राजनीति आदि लगभग सभी क्षेत्रों में तो स्त्री परिधि पर है ही, परन्तु स्वतंत्रता व समानता का पक्षधर हमारा संविधान भी पुरुष सत्ता के हाथ का खिलौना बना हुआ है | 'औरत होने की सज़ा' स्त्री को प्राप्त संवैधानिक अधिकारों की सच्चाई खोल कर पुरुष के अनुकंपा भाव की धज्जियाँ उदा देती है, अपने आप में यह पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि एक पुरुष यहाँ अपने ही पेशे की खामियों को उजागर कर स्त्री पुरुष के लिए समान नागरिक अधिकारों की वकालत करता है, चलिए एक बार फिर ही सही, यह प्रमाणित तो हो गया कि नारीवाद कोई भ्रमक धारणा नहीं बल्कि एक मानवीय दृष्टि है जो स्त्री या पुरुष किसी की भी हो सकती है | अरविन्द जैन विवाह, बलात्कार, संपत्ति, तलाक, निकाह आदि के विभिन्न केसों के माध्यम से क़ानून की कमियों और उनके एकांगीपन को उजागर करते हैं शायद इस समय बच्चों के साथ यौन उत्पीडन व बलात्कार सबसे बड़ा मुद्दा है परन्तु हमारा संविधान बिलकुल सामंती अंदाज़ से 15-16 वर्ष की बालिका के साथ हुए बलात्कार को भी कहकर न्यायसंगत बना देता है कि यह पहले से संभोग कर चुकी है | इसी प्रकार भंवरी देवी बलात्कार काण्ड में जज यह कहकर सहज ही पल्ला झाड लेता है कि समाज के प्रतिष्ठित लोग ऐसा घिनौना कृत्य नहीं कर सकते | अधिकार जब शोषण का तांडव करने लग जाए

तो समाज व स्त्री का भविष्य क्या होगा स्वयम ही सोचा जा सकता है |

सरला माहेश्वरी कृत 'समान नागरिक संहिता' :- सरला माहेश्वरी एक देश में रहने वाले सभी संप्रदायों के लोगों के लिए समान नागरिक संहिता की माँग करती हैं, सरला माहेश्वरी राजनीतिज्ञों के खोखले दावों और झूठों की पोल खोलकर रख देती हैं जो शब्दों में तो महिलाओं को समान अधिकार देने की वकालत करते हैं, परन्तु व्यवहार में वह वोट पाने भर का एक नुस्खा मात्र होते हैं | आज़ादी के ५२ सालों में 'हिन्दू कोड बिल' तथा शाहबानों प्रकरण के माध्यम से समान नागरिक संहिता की आवाज़ बुलंद करतीं हैं | वह स्पष्ट करती हैं कि समान नागरिक संहिता का मुख्य उद्देश्य "स्त्रियों के हक में निजी कानूनों को समाप्त करना भर नहीं बल्कि औरतों के आर्थिक लाभ व कानूनी दृष्टि से उत्थान भी है" |

कात्यायनी कृत 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' :- सरला माहेश्वरी की मूल चिंता का विषय यदि समान नागरिक संहिता है तो 'दुर्ग-द्वार पर दस्तक' में कात्यायनी की चिंता का विषय-पूंजी पर पुत्राधिकार के कारण, साम्राज्यवादी पूंजी पुत्रों द्वारा स्त्री के श्रम व शरीर पर उत्पीडन को रेखांकित करना | एक तरफ कात्यायनी नारी मुक्ति आन्दोलन को दबाने वाले दमनकारी पुरुषों को आड़े हाथों लेती हैं तो दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उस आर्थिक तंत्र को भी खोलती हैं जो तीसरी दुनिया की स्त्रियों के सस्ते श्रम का दोहन कर रहा है और विश्व बैंक जैसी संस्थाएं इनको पोषित कर रही हैं | घरेलू गुलामी यदि पारिवारिक स्तर पर स्त्री का शोषण कर रही है तो बाह्य स्तर पर पूंजीपतियों के षड्यंत्र में

स्त्रियाँ खट रहीं हैं, अर्थात भीतर व बाहर नारी सुरक्षा के घेरे में कहीं नहीं आती इसलिए कात्यायनी नारी मुक्ति के गंभीर सवालों पर विचार-विमर्श की अनिवार्यता को रेखांकित करती हैं |

तसलीमा नसरीन कृत 'औरत के हक में' :- देश, भाषा, संस्कृति, सभ्यता भिन्न भिन्न हो सकते हैं, परन्तु जो भिन्न नहीं है वह है स्त्री और स्त्री का भाग्य चाहे वे हिंदू हो या मुस्लिम, भारतीय हो या बांग्लादेशीय सिर्फ वातावरण व स्थान बदल जाने मात्र से स्त्री का भाग्य नहीं बदलता, यह भाग्य पितृसत्तात्मक समाज की चारदीवारी में बंद ही रहता है, तसलीमा नसरीन ने बचपन से लेकर वर्तमान तक निर्मम नग्न घटनाओं को बेलाग रूप में प्रस्तुत कर उस पुरुष प्रधान परंपरागत सोच व विकृत सभ्यता के गाल पर बड़े ही व्यंग्यात्मक अंदाज़ में थप्पड़ मरा है जो स्त्री होने को 'चरम लज्जा' की चीज़ समझता है | अपने दैनिक जीवन के छोटे-छोटे लेकिन तल्ख़ अनुभवों के माध्यम से वह नारी अस्मिता से जुड़े सवालों को नए सिरे से उठाती हैं |

पूरी पुस्तक में उनकी कोशिश यही बताने की है कि स्त्रियों को धर्मशास्त्रों, सामाजिक रूढ़ियों, पुरुष की निरंकुशता और नीचता को ध्वस्त कर अपनी शक्ति खुद पहचाननी चाहिए | क्योंकि जननी होकर 'खंडित चूर्ण-विचूर्ण' होना उसका भाग्य नहीं | लेकिन सच्चाई और भी है, यह वह भली-भांति जानती है कि घर की चारदीवारी से बाहर निकलते ही नारी को अपने नारीत्व की कुछ न कुछ कीमत चुकानी ही पड़ती है, "कही दृष्टि, कहीं स्पर्श, कहीं मुस्कान और कहीं आह्लाद" के द्वारा, लेकिन इस सबके बावजूद लेखिका क़ानून व धर्मशास्त्र की बेड़ियों को ध्वस्त करने की सलाह देती है, चाहे बेड़ियाँ इस्लाम ने डाली हो या हिंदू धर्मशास्त्रों

ने, बेड़ियाँ तो बेड़ियाँ ही होती हैं चाहे वह कही व कैसी ही क्यों न हों |

अनामिका कृत 'स्त्रीत्व का मानचित्र' :- वर्त्तमान समय में स्त्री विमर्श अथवा नारीवाद ने एक शास्त्र का रूप धारण कर लिया है | इस शास्त्र को जीवन के लगभग हर क्षेत्र में विश्लेषित करने का श्रेय अनामिका को जाता है | समाज व स्त्री व्यवस्था द्वारा निर्मित व पोषित सभी प्रकार की धारणाओं से मुक्त होकर अनामिका स्त्री मुक्ति के क्रमिक विकास की व्याख्या करती हैं और पूर्ण मुक्ति की वकालत करते हुए मानती हैं कि यह असंभव नहीं, इस विकास के अभाव में परिवार व समाज की प्रगति कुंद हो जाएगी | स्त्री व पुरुष दोनों ही इस परिवार व् समाज की इकाइयाँ हैं और दोनों ही इस पितृसतात्मक, सामाजिक व्यवस्था का शिकार हैं लेकिन विडंबना है कि इसमें भी एक शिकार है, एक शिकारी लेकिन "दौष पुरुषों का नहीं, उस पितृसतात्मक व्यवस्था का है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं उनके भोग का साधन मात्र हैं" |

स्त्रीवाद आन्दोलन पश्चिम की उपज है परन्तु पश्चिम का होने भर से उसे खारिज नहीं किया जा सकता बल्कि उसे तीसरी दुनिया की स्त्रियों के संदर्भ में विश्लेषित करने की आवश्यकता है | इसलिए अनामिका अपनी पुस्तक के छठे प्रकरण में एक तरफ भारत में स्त्री केन्द्रित आन्दोलनों की उपलब्धियों और सीमाओं की चर्चा करती हैं तो दूसरी तरफ इन आन्दोलनों से उत्पन्न नैतिक साहस की सराहना करती हैं जो पहाड़ व पर्यावरण जैसे मुद्दों के मूल में विद्यमान है |

मृणाल पांडे कृत 'परिधि पर स्त्री' :- मानव की स्वस्थ परंपरा को सुरक्षित रखने में स्त्री की केन्द्रित भूमिका होने के बावजूद आज भी स्त्री विशेषकर निम्नवर्गीय कामगार स्त्री किस प्रकार 'समाज की परिधि' पर दोयम दर्जे का जीवन जीने को विवश है इसकी यथार्थ खोज मृणाल पांडे ने तर्कों, आंकड़ो, शोध पत्रों की रपट का हवाला देते हुए की है और मानवीय दृष्टि से उस पर विचार करने की सलाह भी डी है, कुल २१ निबंधों के इस संकलन में दलित भंवरी के संघर्ष, आंध्रप्रदेश के एक जिले की लक्षम्मा की जागरूकता, सेवा जैसी महिला संगठनों की प्रतिबद्धता आदि के द्वारा लेखिका ने नारीवाद सोच को आक्रामक तेवर के साथ प्रस्तुत किया है, लगभग सभी निबंधों में लेखिका के चिंतन का मुख्य केंद्र सौन्दर्य के परंपरागत प्रतिमानों से नारी को मुक्त करवा के उसके श्रम सौन्दर्य को उजागर करना रहा है, क्योंकि इस देश की लगभग नब्बे प्रतिशत कामगार महिलाएं कारखानों में मजदूरी करके अपनी रोजी-रोटी कमाती हैं, 'स्व-अस्तित्व', उन्मुक्त स्वतंत्रता जैसी बातों से उनका कोई सरोकार नहीं, क्योंकि उनकी मूल समस्या तो अर्थार्जन और काम की तलाश व उनसे जुड़ी अन्य चिंताएं है, मृणाल पांडे इसी वर्ग की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित रखती हैं |

मृदुला गर्ग कृत 'चुके नहीं सवाल' :- कहते है कि साहित्य समाज का आइना होता है और शायद इसलिए मृदुला गर्ग ने इस साहित्यिक आईने में नारी के बदलते स्वरूप का अक्स देखने की कोशिश की है और नारीवाद की नई परिभाषा गढ़ी है, इसे वह 'देसी नारीवाद' कहती हैं, वैसे आज आवश्यकता भी इसी की है कि पूर्णत: भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श किया जाए | इसलिए

'नारी चेतना', 'सत्ता और स्त्री' तथा 'देशी फेमिनिस्ट' आदि लेखों में समसामयिक समाज संस्कृति पर उन्होंने बेवाक व गहरी टिप्पणी की है तथा समाज के अंतर्विरोधों, विसंगतियों, जटिलताओं और विषमताओं का चित्रण किया है, इसके अतिरिक्त 'भोपाल गैस कांड', 'एक चिड़िया नहीं चहचहाएगी', उदासीनता का जहर, कालिदास का विरही मेघ आदि लेखों में मानवीय करुणा का सामंजस्य देखने को मिलता है |

संपादक राजकिशोर कृत 'स्त्री के लिए जगह' :- पारिवारिक सामाजिक संस्थाओं में स्त्री की क्या जगह है ? वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर द्वारा संपादित पुस्तक 'स्त्री के लिए जगह' यही तलाश करती है, राजकिशोर फ्रायड के उस कथा की चर्चा करते हैं जिसके अनुसार दो-दो स्त्रियों के संपर्क में आने के पश्चात भी वह यह नहीं जान पाए कि 'स्त्रियाँ आखिर क्या चाहती है' , फ्रायड की इस तलाश को राजशेखर ने शुरू में तीन आत्म्वृतान्तों का चयन करके मुकम्मल किया ताकि यह जाना जा सके कि स्त्रियाँ चाहती क्या है ? माना कि वैज्ञानिक प्रगति से समाज में परिवर्तन आया हैं, परन्तु सामान्य धरातल पर नारी के प्रति कमोबेश नजरिया आज भी लगभग वैसा ही है जैसा आज से कई साल पहले तक था, पुरुष तो पुरुष स्वयम स्त्रियों की सोच में भी कोई ख़ास परिवर्तन नहीं आया, स्वतंत्रता, समानता आदि अभी भी स्त्रियों के लिए अपरिचित अनुभव हैं, यह तीनों आत्मवृतांत इसका मुख्य कारण हज़ारों सालों की पराधीनता को ठहराते हैं जिसके तहत आज भी स्त्री अपनी स्वतंत्रता के बारे में सोचने से पहले दस बार समाज के बारे में ज़रूर सोचेगी |

इसका यह अरथ नहीं कि स्त्री बदली नहीं है- स्त्री बदली है उसके प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है, परन्तु आज भी पारिवारिक सामाजिक स्तर पर दहेज, बलात्कार, यौन उत्पीड़न ने स्वयम संस्थाओं का रूप ले लिया है और स्त्री की नियति और प्राप्त स्वतंत्रता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, अलका सरावगी और विनोद भारद्वाज के लेख उस उपभोक्तावादी समाज व संस्कृति को रेखांकित करते हैं जिसने स्त्री को बाजारू 'वस्तु' में तब्दील कर महत्वाकांक्षी की अंधी गलियों में भटकने के लिए छोड़ दिया है |

क्षमा शर्मा कृत 'स्त्री का समय' :- समय-समय पर समाज में घटित होने वाली घटनाओं की प्रक्रिया स्वरूप पिछली शताब्दी में कुछ ऐसी पुस्तकें भी प्रकाश में आई जो दो टूक शैली में महिला संगठनों, सरकारी नीतियों, कानूनों, दावों व इरादों की पोल खोल कर रख देती हैं, यानी 'कथनी और करनी' के इस मूलभूत अंतर को प्रकट करती हैं जिसने नारी के जीवन को अतीतगामी बनाया, छोटी-छोटी बातों को मुद्दा बनाकर लड़ने वाले राजनीतिज्ञ, हल्ला करने वाले महिला संगठन लगभग उस समय मौन धारण कर लेते है जब 'अमीनों सेंटेसिस टैस्ट' के नाम पर हज़ारों भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं या पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशों के नाम पर तीसरे बच्चे के जन्म के समय स्त्री के प्रसव अवकाश पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा होता है, मानो सारा दोष स्त्रियों का ही है, अपने समय संदर्भों में जन्म लेने वाले कुछ ऐसे ही नारी अधिकारों की और उन सभी सवालों के जवाबों की माँग क्षमा शर्मा 'स्त्री का समय' में करती हैं जिन सवालों को सुनकर अक्सर पुरुष सत्ता अपना मुंह छिपा लेती है, वह कहती हैं, "आखिर

आदमियों को यह हक क्यों होना चाहिए कि वे ये बताएं कि औरतें किस तरह का आचरण करें" क्षमा उदारवादी दृष्टिकोण से स्त्री सत्ता और स्त्रीवादी विचारधारा का पक्ष भी लेती हैं क्योंकि वह मानती हैं कि इसी नारीवाद विचार ने स्त्री को पूज्य होने के भाव की धज्जियां उड़ा दी, वह स्पष्ट कहती हैं- "स्त्रीवाद विचार ने और किया सो किया, पूज्य होने के विचार की धज्जियां उड़ा दी, पहली बार स्त्री को पता चला कि देवी होने के जिस अभिमान से वह मरी जा रही थी वह दरअसल उसकी मागनता का आख्यान नहीं, मर्दों द्वारा सदियों से बनाया गया ऐसा विचार भर था जिसने कभी पूजकर तो कभी पीटकर अपनी सत्ता कायम कर रखी थी" | लेकिन त्रासदी यह है कि इस पूज्य भाव से मुक्त होने के पश्चात भी श्लील-अश्लील, संस्कृति-अपसंस्कृति की सारी परिभाषाएँ स्त्रियों के लिए हैं, ऐसे में ही प्रश्न दरअसल प्राप्त अधिकारों व स्वतंत्रताओं को पुन: परिभाषित करने की वकालत करते हैं ताकि सती प्रथा समाप्त होने के पश्चात भी सती होने का उन्माद या विवशता बनी रह पाये |

सारांश यह कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श अथवा नारीवाद पुरुष और स्त्री के बीच नकारात्मक भेद-भाव की जगह स्त्री के प्रति सकारात्मक पक्षपात की बात करता है वस्तुत: इस रूप में देखा जाए तो स्त्री विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं को तलाश करने वाली दृष्टि है, यह दृष्टि एक ओर संपूर्ण सामाजिक जीवन को देखने और रचने का माध्यम बनाती है तो दूसरी ओर साहित्य में स्त्री जीवन की जटिल वास्तविकताओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की शक्ति भी है, राजी सेठ भी कहती हैं कि- "स्त्री की चुनौती

अपने समीकरण को छोड़कर पुरुष के समीकरण को पाना नहीं बल्कि अपने सत्य में से वृहत सत्य की परिधि तक जाना है" | वर्तमान में जो भी स्त्रीवादी साहित्य रचा जा रहा है वह तन्मयता, गहरी संलग्नता और ईमानदारी से रचा जा रहा है उसमें स्त्री जीवन का यथार्थ इतनी बारीकी से झलकता है कि वह हर पाठक को स्त्री जीवन पर सोचने के लिए विवश कर देता है, क्योंकि नारीवाद अथवा स्त्री विमर्श एक स्वस्थ दृष्टिकोण है जो एकांगी नहीं है, यह पुरुषों का नहीं बल्कि उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार है, जो मर्दानगी के नाम पर गढा गया है और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं |

संदर्भ एवं सहायक ग्रन्थ :-

1. औरत होने की सज़ा, अरविन्द जैन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |

2. समान नागरिक संहिता, सरला माहेश्वरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |

3. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, दिल्ली |

4. औरत के हक में, तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली |

5. स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, सारांश प्रकाश प्रा० लि०, दिल्ली |

6. परिधि पर स्त्री, मृणाल पांडे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली |

7. चुकते नहीं सवाल, मृदुला गर्ग, सामयिक प्रकाशन, कानपुर, उत्तर प्रदेश |

8. स्त्री के लिए जगह, सं० राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली |

9. स्त्री का समय, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |